5

चेतन तैं यौं ही भ्रम ठान्यो...

चेतन तैं यौं ही भ्रम ठान्यो,
ज्यों मृग मृगतृष्णा जल जान्यो।
ज्यौं निशितम में निरख जेवरी,
भुजंग मान नर भय उर आन्यो।।टेक।।

ज्यौं कुध्यान वश महिष मान निज,
फँसि नर उरमाहीं अकुलान्यौ।
त्यौं चिर मोह अविद्या पेरयो,
तेरौं तै ही रूप भुलान्यो।।१।।

तोय तेल ज्यौं मेल न तनको,
उपज खपज मैं सुखदुख मान्यो।
पुनि परभावनको करता ह्वै,
तैं तिनको निज कर्म पिछान्यो।।२।।

नरभव सुथल सुकुल जिनवानी,
काललब्धि बल योग मिलान्यो।
'दौल' सहज भज उदासीनता,
तोष–रोष दुखकोष जु भान्यो।।३।।

हे चेतन! तुम व्यर्थ ही भ्रम में पढे हुये हो। जिस प्रकार मृगतृष्णा को जल समझकर मृग दुखी होता हैं एवं रात्रि के अंधकार में रस्सी को सर्प समझकर कोई मनुष्य दुखी होता हैं।।टेक।।

विपरीत ध्यान के द्वारा स्वयं को भैंसा मानकर व अपने को कहीं फंसा हुआ समझकर कोई मानव बहुत आकुलित होता हैं उसीप्रकार तुम स्वयं अपना स्वरूप भूलकर दुःखी होते हो।।१।।

हे चेतन! शरीर का संयोग तो जल में तेल की भांति हैं अर्थात् शरीर तुमसे अत्यंत पृथक्रूप होने पर भी तुम उसके जन्म–मरण से स्वयं को बहुत दुःखी मान रहे हो तथा परभावों का कर्ता बनकर अपने नवीन कर्म को बांध रहे हो।।२।।

कविवर पण्डित दौलतरामजी कहते हैं कि हे चेतन! अब तुम्हें काललब्धि के बल से मनुष्य भव, उत्तम कुल और जिनवाणी का उत्तम योग प्राप्त हुआ हैं अतः अब तुम सहज उदासीनता का सेवन करो और जो दुःख के भण्डार हैं ऐसे राग–द्वेष को नष्ट करो।।३।।